मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़ , उ. प्र.
शोधार्थी-जुगेन्द्र सिंह - 20221360
शोध निर्देशिका- डॉ. सोनिया यादव

लोक साहित्य और इक्कीसवीं सदी का भारतीय समाज

सारांशः

लोक साहित्य उस निर्मल दपर्ण के समान है, जिसमें जनता जनादर्न का अखिल विराट रूप दिखाई देता है। लोक संस्कृति जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में ही उपलब्ध होता है। लोक साहित्य का मूल स्वर एक ही है; तात्विक एकता के आधार पर भारत की राष्ट्रीयता, भावात्मक एकता, मूलभूत एकता, सांस्कृतिक एकता की मूलधारा है। जिसमें समाज का चित्रण किया गया है, इसमें स्वस्थ सदाचारी, धर्म भीरू जैसी नीति प्रतिष्ठित की गई है। वह कल्याण मार्ग को प्रशस्त करती है, वह मंगल दर्शिका है, जिस धर्म का वर्णन किया जाता है, वह संसार में शांति, प्रेम का उपदेश देता है। वह पीड़ित व दलित भावना से ऊपर उठकर है, इसमें राजनीति, आर्थिकावस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म समाज नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाद लगा देता है। मानव और ब्रह्माण्ड की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को सुग्राही बनाने के लिए जहा इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्र पत्र मलीन हो गये हैं, वहा उस धुधलेपन की स्थिति में लोक साहित्य ही दिशा-निर्देश दिया करता है। लोक साहित्य का गम्भीर अध्ययन जीवन और जगत की मौलिक प्रमाणिक खोज के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने के लिए सबसे सरल प्रमाणिक एवं रोचक साधन लोक साहित्य ही तो है। समस्त साहित्य 'फोकलोर' का अंग है। हिन्दी में इसी फोकलोर का पर्याय लोकवार्ता से है, जैसे- वेद साहित्य नहीं है, लेकिन उसमें साहित्य तत्व विद्यमान है, जिसमें देवी, देवताओं, अंधविश्वासों, वृक्ष, पशु, राक्षस, कुल देवता, ब्रह्म, तीर्थ अनेक प्रकार के रोगों के लक्षण और उपचार सम्बंधी और मानव के सोलह संस्कारों में गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार, जात कर्म, जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, मुंड़न संस्कार निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, विद्यारम्भ, कर्णवेध, यज्ञोपवीत संस्कार, वेदारम्भ, विवाह संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार सम्बंधी राग, गीत, छंद, कथाए, उपदेश, मुख्य रूप से वर्णवस्तु के रूप में प्रयुक्त हैं। सनातन धर्म में संस्कारों का विशेष महत्व है, इनका उद्देश्य शरीर, मन और मस्तिष्क की शुद्धि और उनको बलवान करना है। जिससे मनुष्य समाज में सकारात्मक विचार, सात्विक भोजन एवं परिवार की स्वस्थ परम्परा के अनुसार अपनी भूमिका आदर्श रूप में निभा सके। इक्कीसवीं सदी में वैदिक काल के ज्ञान को शोध द्वारा विस्तृत रूप दिया गया है। चौदह विद्या और सोलह कलाओं का विशेष महत्व है; हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार विद्या दो प्रकार की होती है- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, नक्षत्र, वास्तु, वेद, आयुर्वेद, कर्मकांड, ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, हस्त रेखा, धनुर्विद्या आदि सभी 'परा' विद्याए हैं। लेकिन प्राण विद्या, त्राटक, सम्मोहन, जादू, टोना, स्तंभन, इन्द्रजाल, तंत्र मंत्र, यंत्र, चौकी बाधना, गार गिराना, सूक्ष्म शरीर से बाहर निकलना, पूर्व जन्म का ज्ञान होना, अर्न्तध्यान होना, त्रिकालदर्शी बनना, मृत संजीवनी

विद्या, पानी बताना, अष्टसिद्धिया, नवनिधिया आदि 'अपरा' विद्या हैं। दो प्रकार की कलाओं में 'सांसारिक' और आध्यात्मिक; कलारिपट्टू (मार्शल आर्ट), भाषा लेखन, नाट्य, गीत, संगीत, नौटंकी, तमाशा, वास्तुशास्त्र, स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, पाककला, साहित्य, बेल बूटे बनाना, नृत्य, कपड़े, गहने बनाना, सुगन्धित इत्र, तेल बनाना, नगर निर्माण, सूई का काम, बढईगीरी, स्वर्णकारीगरी, परीक्षण कला, कथावाचन कला, पशु पक्षियों की बोली बोलना आदि 64 कलाओं में सांसारिक 16 कलाएं ही मुख्य हैं। आध्यात्मिक कलाओं में 15 शुक्ल पक्ष तथा 16वीं उत्तरायण है। वेदों के अनुसार- अन्नमाया, प्राणमाया, मनोमाया, विज्ञानमाया, आनंदमाया, अतिशयिनी, विपरिनाभिनी, संमिनी, प्रभवि, कुंथिनी, विकासिनी, मर्यदिनी, सन्हालादिनी, अल्हादिनी, परिपूर्ण और स्वरूपावस्थित इत्यिादि। सोलह कला युक्त पुरूष में व्यक्त तथा अव्यक्त की सभी कलाएं होती हैं। लोक साहित्य में इनके विषय में ज्ञान लोक कंठ में संचित रहता है। इक्कीसवीं सदी के भारतीय समाज में अर्वाचीन शिष्ट मानव ने वेदों के परिष्कृत ज्ञान-विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से सामाजिक जन जीवन में सकारात्मक क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सतत् प्रयास किया है, जिसका मुख्य आधार लोक साहित्य ही है। वेद व्यास ने प्राचीन भगवत्गीता में ज्ञान या शिक्षा को संसार का सबसे महत्वपूर्ण पवित्र तत्व बताया है- "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" अर्थात इस संसार में ज्ञान के समान और कुछ पवित्र है ही नहीं।

भूमिका:

लोक साहित्य का तात्पर्य उस साहित्य से है जो परम्परागत रूप से लोककंठ में संचित है। डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार- "लोक साहित्य जनता की सम्पत्ति होने के कारण लोक-संस्कृति का दर्पण है।"[1] लोक भाषा एवं रस के माध्यम से लोक चिंतन की अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य का अभीष्ट है, वह लोक समाज की जीवन पद्धति लोक मर्यादाओं पर आधारित होती है। भारतीय समाज में लोक मर्यादाओं का आधारभूत ढांचा प्राचीन एवं वैदिक कालीन आस्थाओं और परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है, जिसमें लोक जीवन की वाणीगत समस्त प्रवृत्तियां समाहित है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान- पतन हुआ और देश और दुनियां के समाज में बहुत तेजी से बदलाव हुआ है, जनमानस के खान-पान, रहन-सहन, परम्पराओं, सामाजिक ताने-बाने के साथ भाषा में प्रगतिशील सुधार हुए हैं। लेकिन लोक साहित्य बिना किसी बड़े परिवर्तन के अविरल रूप में प्रवाहवान है। लोक साहित्य जनमानस की चित्तवृत्तियों की स्वाभाविक मौखिक अभिव्यक्ति मे भी सूक्षम परिवर्तन हुए हैं। लोक साहित्य मानव मनोवृत्ति की मानव समाज के सापेक्ष उपज है जिसमें जन साधारण वर्ग की समग्र भावनाएं समाहित हैं। लोक साहित्य किसी भी समाज या वर्ग के सामूहिक जीवन की संवेदनाओं, अनुभवों और परिस्थितियों को परलक्षित करता है उस लोक जीवन में हर्ष, शोक, आचार-विचार, रीति-रिवाज, विधि-विधान, विश्वास, आस्थाए, प्रथाए, विभिन्न कला-कलापों के साथ परम्पराएं समाहित होती हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी देश की लोक संस्कृति का मात्रभाषा में व्यक्त आड़म्बर रहित साहित्य है। भारत में लोक साहित्य सम्बंधी संकलन का कार्य प्राय: सभी लोक भाषाओं में हुआ है। आधुनिक काल में विभिन्न लोक भाषाओं में उपलब्ध लोक साहित्य का संकलन एवं विश्लेषण अनेक संस्थाओं और विद्वानों द्वारा किया जा रहा है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि लोक साहित्य से अनिभिज्ञ होने के बावजूद भी लोक साहित्य के नाम पर ऐसा संकलन किया गया, जिसे देखकर डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने स्पष्ट किया है कि- "लोक साहित्य लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तर आगे बढ़ता रहता है, इस साहित्य के रचियता का नाम भी अनिभिज्ञ रहता है। लोक का प्राणी जो कहता-सुनता है उसे समूह की वाणी बनाकर उसे समूह में घुल मिलकर ही कहता है।"[2]

भारत एक बहुजातीय, बहुधार्मिक, बहुवर्णीय, बहुभाषीय, बहुसांस्कृतिक देश है। बहुधार्मिक होने के कारण विभिन्न धर्मों के मानने वालों की रीति-रिवाज परम्पराओं और आस्थाओं की विचारधाराओं में विशेष अंतर है। प्रो.एम श्रीनिवासन (1966) की रिपोर्ट के अनुसार- "भारत एक विशाल सांस्कृतिक और धार्मिक विभिन्नताओं का देश ही नहीं है बल्कि यहा□की जनसंख्या सामाजिक और आर्थिक आधार पर अनेक स्पष्ट रूपों में विभाजित है। इस विभाजन का एक मुख्य परिणाम यह भी है कि भारतीय समाज में लोक चेतना हर स्थान पर मौजूद है।"[3] भारत का समाज वर्ण, वर्ग, परिवार, गा□, समुदाय में विभाजित है। इन विभाजित खंडों में जाति, कृषि, तकनीकी, भाषा और संस्कृति के माध्यम से पारस्परिक सम्बंध विकसित हो रहे हैं। भारतीय सभ्यता विविधता का रूप संजोये हुए है। वर्तमान युग में आधुनीकरण और लचीली प्रकृति के कारण भारतीय समाज में त्वरित परिवर्तन देखा जा रहा है। उदाहरण के तौर पर डी एन मजूमदार कहते है कि- "भारतवर्ष के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में गारो जाति के संस्कृतीकरण की प्रि□या के तीन सोपान हैं- प्रथम सोपान में जनजाति गो मांस भक्षण और सूअर व पक्षियों का पालना त्याग देती हैं अर्थात वे हिन्दू संस्कृति को अपनाते हैं। दूसरे सोपान में जनजातियों के रीति रिवाज को त्याग कर हिन्दू रीति रिवाजों, देवी देवताओं और संस्कारों को अपनाया है। तीसरे सोपान में जनजाति संगठन पद्धति को छोड़कर हिंदू संगठन पद्धति के अपनाया है।"[4] मजूमदार के अनुसार परिवर्तन की इस प्रि□या का अंत आर्य भाषा को अपनाना व वनवासी पद्धति का पूर्ण रूप से त्याग करना हुआ। बहुत सी जनजातियां व पिछड़े वर्ग की जनजातियां आज के तकनीकी परिवर्तन से प्रभावित हो रही हैं। वनवासी लोग फैक्ट्रियों में काम करने लगे हैं, उनकी जीवन पद्धति पूर्णरूपेण परिवर्तित हो गई है। यह इस बात का साक्षी है कि शिक्षा और आधुनीकरण की शक्तियों ने सामाजिक परिवर्तन की दिशा ही बदल दी है। लोक-वर्ण व्यवस्था, व्यवसायिक वर्ग-व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रही हैं जैसे- खेती करने वाले श्रमिक, दैनिक वेतनहारी, फैक्ट्रियों में काम करने वाले श्रमिक, अधिकारी, प्रशासक, शिक्षाविद और चिकित्सक आदि उभरती सामाजिक पद्धति में विभिन्नता में एकता के सूचक हैं। कृषक जिसके पास विस्तृत भूमि और सम्पत्ति है और उत्पादन के बेहतर साधन हैं, पहले वे पू□□पति, बाजार व्यवस्था, शिक्षा व प्रतिस्पर्धी राजनीति के माध्यम से अपने क्षेत्र के समाज की **उच्च श्रेणी** में शामिल हो गये हैं, दूसरे भूमिहीन, दैनिक वेतन अर्जित करने वाले समाज के **निम्न श्रेणी** में मिल गये हैं। इस प्रकार अब दो आदर्श समूह राष्ट्रीय प्रतिमान बन गये हैं।

भारतीय समाज विवधताओं में एकता का प्रतीक है, लेकिन भारत का लोक साहित्य लोक भाषाओं पर आश्रित है। "2011 में जनगणना के आंकडों के अनुसार भारत में 780 मातृभाषाए□(□ोलिया□)□प्रचलन में हैं। वस्तुत: भारतीय जनमानस को चार भाषाई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। भारतीय हिन्द-आर्य, द्रविड, ऑस्ट्रोएशियाटिक और तिब्वती-वर्मी। ये व्यापक भाषा वर्ग क्षेत्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं और बोलियों में विभाजित किया जा सकता है। हिन्दी आर्य भाषाए□-पालि, प्राकृत, मारवाड़ी/मेवाड़ी, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी, कश्मीरी, भोजपुरी, मैथिली, अवधी, नेपाली, मराठी, डोगरी, कुमरमाली, नागपुरी, कोंकणी, गुजराती, बंगाली ओडिया, असमिया, गूजरी। द्रविड़ भाषाई परिवार भाषायें- तमिल, तेलग, कन्नड़, मलयालम, तुलू, कोंडगू, गेंड़ी, कुडुख। आस्ट्रोएशियाटिक भाषाए□-संथाली, बोड़ो, मुंडारी, हो, खासी, भूमिज, निकोबारी। तिब्वती-वर्मी परिवार भाषाए□-मणिपुरी, खासी, मिजो, आओ, म्हार, नागा इसके अलावा फारसी, अरबी, चीनी, वर्मी, पुर्तगाली, □ांसीसी बोली जाती हैं। वर्तमान में संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित मुख्य 22 भाषाओं में से एक मात्रभाषा को ही राजभाषा का स्थान प्राप्त है।"[5] हिन्दी और अन्य भाषाओं की भाषाई विषमता से समूचे भारत में एक सामाजिक लकीर होने के वावजूद भी लोक साहित्य में समानता प्रतीत

होती है। आधुनिकरण की दौड़ में कुछ जनजाति समूहों का शहरों की ओर पलायन करने से लगभग 250 मात्रभाषाए ंव बोलियां विलुप्त हो गई। कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी का भारत विकास के पथ पर जितनी तीव्रता के साथ उड़ रहा है उतनी तेजी से प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत से विमुख भी होता जा रहा है, जिसका लोक साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ना लाज़मी है।

लोक साहित्य की आधुनिक अवधारणाः

'लोक साहित्य' लोक जीवन की अभिव्यक्ति है वह जीवन में घनिष्टता से सम्बंधित है। 'लोकसाहित्य' दो शब्दों- लोक तथा साहित्य से मिलकर बना है। 'लोक' शब्द आरम्भिक साहित्य वेद के साथ भी मिलता है। लोक वेद की चर्चा भी सुनी जाती है किन्तु वेद में कही गयी बात वैदिक तथा लोक में कही गयी बात लौकिक होती है। लोक साहित्य जनमानस की धरोहर है जैसे- अन्न, जल, सांस की तरह ही उसके जीवन का अभिन्न अंग है। जन संस्कृति में जैसा सच्चा और सजीव चित्रण उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं है। लोक कथा को अपनी सरलता, स्वाभाविकता तथा सहजता के कारण संसार में समस्त लोक साहित्य का जनक माना जाता है और लोक गीत सफल काव्य की जननी है। लोक साहित्य अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण मानव समाज में विशेष स्थान रखता है।

लोक साहित्य एक अत्यंत रोचक विषय है, इसकी रोचकता के कारण ही सभी इसका रसास्वादन करते हैं, विशेषकर गाॅव की जनता और शहर में काम करने वाले श्रमिक जो किसानों की संतान हैं। लोक साहित्य किसी अध्ययन या अध्यापन का विषय नहीं है, लेकिन लोक साहित्य को वैज्ञानिक दृष्टि से परखा जाए तो यह समाजशास्त्र, जातिगत मात्रभाषा तथा भाषा विज्ञान का संयोजन है। लोक साहित्य का तात्पर्य उस साहित्य से है जो परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी लोक कंठ में सुरक्षित है। लोक साहित्य की पूरी परम्परा अलिखित होने पर भी लोक जीवन को प्रभावित किए हुए है। लोक साहित्य की रचनाओं में सम्बंध समाज के जनसामान्य का सुख: दुख, आशा-निराशा, हास-रूदन और जीवन के अन्य पक्षों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। लोक साहित्य में लोक के अर्थ एवं परिभाषा के आधार पर 'लोक' की अवधारणा को स्पष्ट करना है- लोक साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों के लिए किया गया है-

> नाभ्यां असीदंतरिक्षं गुम शीर्ष्णो द्यौ: समवर्तत।
> पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्।।[6]

इसी प्रकार उपनिषदों में भी अनेकश: 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में कहा गया है कि लोक का व्यापक रूप है प्रत्येक वस्तु में वह प्रभूत या व्याप्त है प्रयत्न करके भी कोई उसे पूरी तरह से नहीं जान सकता है-

> बहुव्याहितो वा अयं बहुतो लोक:
> क एदत् अस्य पुनरी हितो अयात।[7]

लोक संस्कृत के शब्द 'लोकदर्शने' धातु में 'ध' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है देखना। लट् लकार के अन्य पुरूष एक वचन में इसका रूप लोकते हो जाता है अत: लोक का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय में कार्य करता है वह 'लोक' के अन्दर समाविष्ट है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में- "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्यत, वर्तमान सभी संचित रहता है। 'लोक' साहित्य का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न (सम्पूर्ण संसार), सम्पूर्ण अध्ययन, कृत्स्न ज्ञान,

सब शास्त्रों का पर्यवसान (अंत) है। आधुनिक मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक सम्पूर्ण पृथ्वी को तथा परलोक पृथ्वी से दूसरे ब्रह्माण्ड की संकल्पना, लोक ज्ञान मानव जीवन का आध्यात्म शास्त्र है। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणत्य रूप है।"[8] डॉ. सतेन्द्र ने लोक की परिभाषा इस प्रकार दी है- "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीय और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[9] डॉ. श्याम परमार ने कहा कि "आधुनिक साहित्य की नूतन प्रवृत्तियों में लोक कथा का प्रयोग गीत, कथा, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन समाज, जिसमें पूर्ण संचित परम्परायें, भावनायें, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यिक सामिग्री ही नहीं अपितु अपने विषयों के अनगढ़ ठोस रत्न छिपे हुए हैं के अर्थ में होता है।"[10]

साहित्य की परिभाषा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "साहित्य मनुष्य के अंदर का उच्छलित आनंद है जो उसके अंतर में अटाए नहीं अट सकता है साहित्य का मूल यही आनंद का अतिरेक है। उच्छलित आनंद के अतिरिक्त अद्भुत सृष्टि ही सच्चा साहित्य है।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।" सुमित्रानंदन पंत के अनुसार "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है।" 'साहित्य' लिखित कार्यो का समूह है, यह नाम परम्परागत रूप से पद्य और गद्य के उन कल्पनाशील कार्यो पर लागू किया गया जो उन लेखकों के इरादों और उनके निष्पादन की कल्पित सौंदर्य उत्कृष्टता से प्रतिष्ठित है। साहित्य मुख्यत: दो प्रकार का होता है प्रथम मौखिक; जिसमें गाथा गीत, लोकगीत, दंत कथाएं, चुटकुले और कहानियां शामिल हैं और द्वितीय लिखित इसमें कविता, उपन्यास, कथा, मिथक, कहानियां, जीवनी, नाटक और संस्मरण शामिल हैं। काल्पनिक गद्य व पद्य और गैरकाल्पनिक गद्य व पद्य की अभिव्यक्ति ही साहित्य में समाविष्ट है।

लोक साहित्य का आशय:

लोक साहित्य को डॉ. हजारी प्रसाद ने परिभाषित किया है- "ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जाती हैं।"[11] वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान में जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष -विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य से प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं।"[12] 'हिन्दी साहित्य कोश' के सम्पादक ने लिखा है कि- "वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति विशेष ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस का प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता है, जिसका प्रत्येक शब्द, स्वर प्रत्येक लय और लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज ही लोक भी अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।"[13] लोक साहित्य अत्यन्त विशाल और व्यापक है जहा भी लोक है उनकी अनुभूतिया और अभिव्यक्ति है, वही लोक साहित्य है, ऋतु परिवर्तन का प्रभाव, उल्लास और आनंद की अनुभूति करता है। लोक गीतों में गंगा-यमुना की तहजीब दिखाई देती है। खेतों में बुबाई, निराई-गुड़ाई, रोपनी आदि के समय गीत गाये जाते हैं। जनता वीर योद्धाओं के शौर्यपूर्ण कार्यो को गाकर आनंद प्राप्त करती है, सामान्य जनता जिन शब्दों में रोती है, हसती है, गाती है, खेलती है; पुन: जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों को लेकर गीत गाने की पृथा प्रचलित है।

भारतीय लोक साहित्य का वर्गीकरण:

लोक साहित्य को गद्य और पद्य दो वर्गों में विभक्त किया गया है। लोक साहित्य में गद्य लोक कथाओं तथा मुहावरों के रूप में उस लोकगाथा के नाम से जानते हैं। पद्य के अंतर्गत लोक गीत मुक्तक के रूप में पुकारा जाता है। लोक साहित्य को लोकगाथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोककल्प, लोक सुभाषित तथा प्रकीर्ण में विभक्त किया गया है-

लोकगाथा: लोकगाथा अंग्रेजी के शब्द 'बैलेड' के रूप में बोध कराता है जिसमें ग्राम गीत, नृत्य गीत, आख्यान गीत, वीर गीत, वीर काव्य आदि को सीधे साधे छंदों में सीधी साधी बातों को कहा जाता है जो लोक कंठ से विकसित होता है जिसका प्रचार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है अर्थात "लोकगाथा वह गीत है जो किसी गाथा को कहता है। इनका गायन मैथिली, मगही तथा भोजपुरी भाषा में अधिक हुआ है। दूसरी दृष्टि से वह कथा है जो गीतों द्वारा कही जाती है जैसे हीर-राझा, लोरिकायन, बिहुला, गोपीचंद, भरथरी गायन आदि।"[14] लोक गाथाओं के अज्ञात प्रणेताओं ने एक गंगा सी बहा दी जिसमें स्थान, प्रांत भेद के कारण मात्र ही उसकी शब्दावली में अंतर आ जाता है जैसे- आल्हा छंद के रचियता के रूप में जगनिक माने जाते थे जो कि उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध था लेकिन आल्हा ऊदल की काल्पनिक वीरगाथा का मूल गायक विलुप्त हो गया। ढ़ोला मारूरा दूहा राजस्थान की लोक गाथा जिसमें रहन सहन, रीति रिवाज, खान पान, आचार विचार का सजीव चित्रण किया गया है। लोरिकायन में बिहार के नगरों का वर्णन है, भोजपुरी की सबसे प्रसिद्ध लोकगाथा है। इसका नायक लोरिक वीर योद्धा होता है। लोक गाथाओं में टेक पदों की पुनरावृत्ति रचने की बड़ी विशेषता है। डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार- "हमारी संस्कृति ताने बाने से बुनी गयी है, हमारी संस्कृति हमारे समाज और साहित्य में धर्म का स्वरूप सबसे ऊपर है।"[15]

लोकगीत:

लोकगीत की उत्पत्ति लोगों की मौखिक परम्पराओं से होती है 'लोकगीत' शब्द अंग्रेजी के फॉकसांग का पर्याय रूप माना गया है, श्री कुंजबिहारी दास के अनुसार- " लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मकता की अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप से आदिम व्यवस्था में निवास करते है।"[16] लोकगीत जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है, सामान्यत: लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए मुखरित गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का प्रचलन स्थानीय, प्रादेशिक या आंचलिक भाषाओं में अनवरत पीढ़ी दर पीढ़ी गंगा के पवित्र जल की तरह प्रवाहवान है। प्राय: लोकगीत लिखित साहित्य का हिस्सा नहीं होते हैं। ये गीत विशेष अवसरों, त्योहारों तथा ऋतु परिवर्तन पर संस्कार गीत, गाथा गीत, पर्व गीत, पेशा गीत और जातीय गीत गाये के लोगों द्वारा वहा की भाषा में ढोलक, झांज, करताल, चिमटा तथा बांसरी की मदद से गाये जाते हैं। भारत का प्रसिद्ध लोकगीत बिरहा है और सबसे लोकप्रिय राष्ट्रगान है। समय के साथ नये लोक साहित्य का सृजन होता रहता है।

लोककथा:

लोककथा जन समुदाय में प्रचलित किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा रचित पारम्परिक कहानी, जिसमें भाषा विचार और भावों की सहजता होती है। लोक में मौखिक परम्परा से कहानिया आती हैं। कथा शब्द धार्मिक

तथा व्रतानुष्ठानों के लिए किया जाता है। इन लोक कथाओं में लोकलाज के अंतर्गत मोह माया, सतकर्म, दान-धर्म, पाप-पुन्य, मर्यादा, आदर, सम्मान तथा सत्य जैसे तत्वों को ध्यान में रखा गया है। इसमें रामायण की कथा, भागवत कथा, महाभारत की कथा, सत्यनारायण की कथा जिसमें श्रोतागण धर्म लाभ कमाते हैं। कहानियां धर्म गाथा या पुराण कथाओं से कही जाती हैं, इसलिए इन्हें लोक कहानी की संज्ञा दी जाती है। फॉकटेल में केवल दान, धर्म गाथा, कथा, पशु-पक्षी विषयक नीति कथाऐं प्रचलित है। पंचतंत्र- विष्णु शर्मा, हितोपदेश की कहानियां, बेताल, पंचविशंतिका, जातक कथाएं पाली भाषा में लिखी गयी हैं। लोक कथाओं में किसी वीर के कौशल का वर्णन अभीष्ट होता है, जिसमें उसके चरित्र का वर्णन नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है।

लोक नाटकः

लोक की कृति संवादों के माध्यम से किसी कथा को नाट्य मंचन रूप में प्रस्तुत करने की विधा को नाटक कहते हैं। डॉ. श्याशरण परमार के अनुसार- "लोक नाटय् से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका सम्बंध विशिष्ट समाज से भिन्न सर्वसाधरण के जीवन से हो, जिसमें अभिनय हेतु रंगमंच की तैयारी नहीं करनी पड़ती, जो परम्परा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।"[17] लोक नाटकों की भाषा लोक भाषा होती है, जिनमें लोक विश्वास, लोक रूढ़ियों और मानव धर्म की प्रधानता रहती है। विदेशिया नोटंकी या स्वांग-सत्यवादी हरिश्चंद, रामलीला, नौटंकी, दशावतार, करियाला, ख्याल आदि भारत में ख्याति प्राप्त नाटक हैं। रासलीला कृष्ण भक्ति काव्य धारा की मूल नाट्य संरचना है। कठपुतली राजस्थान का नाच दिखाने वाले कलाकार होते हैं। नाटक में गीत के साथ संगीत योजना बड़ी आनंद प्रदत्त होती है यदि इनके साथ नृत्य भी हुआ हो तो आनंद की अपार संभावनाएं बनी रहती हैं। 400 ईसा पूर्व नाट्य शास्त्र की रचना भरतमुनि द्वारा की गई थी।

लोक सुभाषितः

ऐसे शब्द समूह व वाक्य या अनुच्छेद को लोक सुभाषित कहते हैं, जिसमें कोई बात सुन्दर ढ़ंग से या बद्धिमतापूर्ण तरीके से कही गयी हो, सुभाषित दो शब्दों से मिलकर बना है सु+भाषित, सु का अर्थ सुन्दर, मधुर तथा भाषित का अर्थ वचन। नीति वचन भी कहते हैं। जनता के जीवन में ये वचन बिखरे पड़े हैं, उन्हें लोक सुभाषित नाम दिया गया है। सुवचन, सूक्ति, अनमोल वचन आदि शब्द इनके लिए प्रयुक्त होते हैं जैसे-

यस्य कस्य तरोः मूलं येन केन अपि घर्षितम।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यत् वा तत् वा भविष्यति।।

अर्थ- इस या उस वृक्ष का मूल ले लिया जिससे तिससे घिस लिया, जिसको तिसको दे दिया (पिला दिया) तो परिणाम भी जैसा-वैसा ही मिलेगा।

प्रकीर्ण साहित्यः

प्रकीर्ण का शाब्दिक अर्थ है फैला हुआ, बिखरा हुआ, मिलाया हुआ, मिश्रित फुटककल, लोक साहित्य की ऐसी विधाएं जो बिखरी हुई हैं और उनमें अस्त-व्यस्त विशेषण लगाये जा सकते हैं, इनमें अनेक नई-पुरानी प्रवृत्तियां घुल-मिल जाती हैं और उनका वास्तविक कलेवर भी बदल जाता है। मनुष्य के दैनिक जीवन में अक्सर विशेष या बात-बात पर अपने अनुभवों को तकिया कलाम की भांति प्रयोग करने वाली अनेक उक्तियां समाज में प्रचलित हैं, उन्हें लोक साहित्य में फुटकल अथवा प्रकीर्ण साहित्य के नाम से जाना जाता है। 'प्रकीर्ण साहित्य' लोक विज्ञान के अनुसार लोक प्रकीर्ण ऐसा साहित्य है, जिसमें अभिव्यक्ति का इतना विस्तार नहीं और

जिसका अभिप्राय: कथा अथवा गीत की तरह किसी बात को बात के आनंद के लिए कहने की प्रवृत्ति में कम मिलता है, किंतु इसमें बहुत संक्षेप में कुछ व्यवहार विषयक बातों को प्रकट करने की प्रवृत्ति विशेष होती है। लोक प्रकीर्ण में कहावत, सूक्ति, मुहावरे, पहेली, ढकोसला जैसी लोक साहित्य की उपविधाएं सम्मिलित हैं। सांकेतिक ढ़ंग से लोक समुदाय की सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं को अभिव्यक्त करते हैं, कुछ ऐसी सूक्तियां उपलब्ध हैं जिनमें नीति वचन कहे गये हैं, प्रकीर्ण साहित्य में स्वानुभूतिक, मनोरंजनपरक तथा दीर्घकालीन अनुभव शामिल हैं। प्रकीर्ण साहित्य लोक मानस की उपज है जो स्त्री, पुरूष, व्यवसाय के अलावा पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित होती है।

(क) कहावत (लोकोक्ति):

'लोकोक्ति' लोक जीवन के सर्व सामान्य अनुभव की लाक्षणिक उक्ति है यह सामान्य बुद्धि और लोक व्यवहार का बोध कराती है, जिसका सम्बंध किसी न किसी पौराणिक कहानी से जुड़ा होता है। लोकोक्ति की प्रमुख विशेषता कम शब्दों में अधिक बात कहने में समक्ष है। कहावतों के पीछे दीर्घकालिक अनुभव होता है, इन्हें ग्राम जगत का नीतिशास्त्र भी कहा जा सकता है। इनमें मनुष्य की प्रकृति, स्थान, काल आदि की परम्पराएं छिपी होती हैं उदाहरणत: "रांड सांड सीढ़ी सन्यासी, इनसे बचे तो सेवे कासी।" "आसमान से गिरा खजूर में अटका।" "जल्दी सोना जल्दी उठना।" आदि प्राचीन कहावत हैं।

(ख) मुहावरा:

प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत लोक भाषा की दूसरी विलक्षण अभिव्यक्ति मुहावरा है। जिस सुगठित शब्द समूह से लक्षणाजन्य और कदाचित व्यंज्नाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता हो उसे मुहावरा कहते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में- "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला अपूर्ण वाक्य खण्ड़ है जो अपनी उपस्थिति में समस्त वाक्य को सबल, रोचक और दुरूस्त बना देता है।"[18] संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कोतूहल से देखा है और समझा है, उसने शब्दों को बांध दिया है, वे ही मुहावरे कहलाते हैं। मुहावरे लोक जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं। इनके पीछे लोक प्रचलित साधारण प्रथाऐं, रूढ़ियों और परम्पराओं में निहित रहती हैं, इनमें लोक मानस की सामाजिक स्थिति, आर्थिक दशा का भी बोध होता है जैसे- कंगाली में आटा गीला, चौका बैठाना, दूज का चांद होना, कपाल पर ब्रह्म चढ़ना, आंख फड़कना, गीदड़ भभकी देना आदि।

(ग) पहेली:

'पहेली' लोक साहित्य की ऐसी उपविधा है जिसमें किसी विषय या वस्तु का वर्णन रहस्यपूर्ण ढंग से प्रश्न शैली में किया जाता है। प्रश्नकर्ता इसका अर्थ श्रोता से पूछता है, इससे लोक बुद्धि की परीक्षा भी होती है, शब्द खोज से मनोरंजकपूर्ण ज्ञान में वृद्धि होती है। मध्यप्रदेश में कुछ अवसरों पर पहेली अनुष्ठान के रूप में प्रचलित है। कुछ जातियों में विवाह के अवसर पर पहेली पूछने की प्रथा है। लोक में व्यापक रूप से बच्चों के खेल की तरह पहेलियां सुलझाने का प्रचलन आज भी है। आदिम काल से लोक में प्रचलित वाग्विलास की विधा है। अमीर खुसरो आदि काल के कवि हैं जिन्होने पहेलियां, मुकरियां और लोकगीत की रचना की, जिनमें हिन्दी, उर्दू, ब्रजभाषा, फारसी भाषा का समन्वयन मिलता है। उदाहरण के लिए-

एक बाग में ऐसा हुआ, आधा बगुला आधा सुआ। उत्तर- मूली

एक थाल मोतियों से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरे, मोती उसमें से एक न गिरे।। उत्तर- आकाश

(घ) ढकोसलाः

'ढकोसला' उलटबासी की तरह बे सिर पैर की ऊटपटांग और असंभव बातों को जोड़कर बनने वाली लोकाभिव्यक्ति है। भ्रम संजाल रचना, मिथ्या माया की रचना ताकि किसी विशेष प्रयोजन से कार्यसिद्धि हो सके। कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति की रूपरेखा पुस्तक में लिखते हैं कि ढकोसला पहेलियों से भिन्न होते हैं, पहेलियों में प्रश्न उनके उत्तर सार्थक होते हैं, परंतु ढकोसला में ये सभी बातों का जोड़ तोड़ ऊंटपटांग, असम्भव तथा निरर्थक होता है, इनका एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन करना तथा हास्य रस की सृष्टि करना होता है जैसे-

धौरी घोड़ी लाल लगाम
वापै बैठयो सालिग्राम (ब्रज भाषा का ढकोसला)

भारतीय समाज में लोक साहित्य का विकासोन्मुखी स्वरूपः

भारत का आरम्भिक साहित्य लोक साहित्य है, वैदिक काल में रामायण, महाभारत और आल्हा युद्धों की रचनाओं से प्रभावित हैं। मनुष्य की कल्पनायें साहित्य में उतरती हैं, साहित्य का आधार लेकर विज्ञान विकसित होता है- "पुष्पक विमान का वर्णन रामायण में आता है जिसकी संकल्पना से आधुनिक युग में हवाई जहाजों का निर्माण हुआ। रामायण और महाभारत में कई महाशक्तियों का वर्णन है जिनको काल्पनिक मानकर हल्की फुल्की मजाक में कहा जा सकता है यदि उन्हें परमाणु शक्ति से जोड़कर देखें तो सभी भ्रम दूर हो जाते हैं।" इक्कसवीं सदी में साहित्य की स्थिति एवं संभावनायें किताबों के भीतर सूक्ष्मताओं के साथ विचारशील हैं। भूतकालीन और वर्तमान साहित्य को देखकर हिन्दी साहित्य ने करवट ली है। हिन्दी साहित्य विश्वपटल पर अपनी विशेष पहचान हिन्दी भाषा के माध्यम से स्थापित कर चुका है। अंग्रेजी और चीनी भाषा के बाद हिन्दी विश्व में 615 मिलियन लोगों द्वारा बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। 132 देशों में भारतीय मूल के लोग अपना काम हिन्दी में निष्पादित करते हैं, वे सभी भारतीय परम्पराओं और रीति- रिवाजों का अनुपालन करते हैं, हिन्दी भाषा एशियाई देशों का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दी भारत की संवैधानिक राजभाषा है जो भारत के अधिकांश प्रदेशों में 44% से लोगों द्वारा बोली जाती है। हिन्दी के माध्यम से बाजारीकरण और औद्योगिकरण में मनुष्य आगे बढ़ रहा है एक-दूसरे के नजदीक पहुंचा है और आपसी सम्बंधों से प्रभावित हो रहा है। मानव का बहुमुखी विकास हो रहा है, सुख-सुविधाओं में असीम वृद्धि हो रही है। झुग्गी, झोपड़ियों और कच्चे मकानों के स्थान पर पक्के मकान तथा शौचालय व स्नानागार, बिजली, पेय, पक्की सड़क व संचार के साधनों से गांव का स्वरूप बदल रहा है। मोबाइल क्रांति ने सामाजिक जीवन शैली को प्रभावित किया है। मशीनीकरण से एक ओर देश में तीव्रगामी विकास हो रहा है, वहीं आधुनिक तकनीकि से किसानों के कार्य करने की क्षमता बढ़ी है और उत्पादन में वृद्धि भी हुई है। नगर, शहर स्मार्ट सिटी में बदल रहे हैं, रेल, द्रुतगामी मेट्रो, सस्ती हवाई यात्रा, अंतर्राष्ट्रीय स्तर की सड़कों ने सड़क परिवहन को गति प्रदान की है। दूसरी ओर समय का अभाव महसूस किया जा रहा है, जिसका सीधा प्रभाव समाज में लोक साहित्य पर पड़ रहा है। सरकारी रोजगार के स्थान पर स्वरोगार, लघु उद्योग, निजी व्यवसायीकरण ने स्थान ले लिया है। विज्ञान में नित नवीन आविष्कारों व खोजों ने मानव जीवन को नई दिशा दी है। लोक साहित्य में चंदा मामा, सूर्य, मंगल ग्रहों तक की जो कल्पना की गयी थी, आज उन्हें अंतरिक्ष विज्ञान ने साकार कर दिया है। मानव आकांक्षाओं की पूर्ति में चुनौतियां

बाधक नहीं है अपितु लक्ष्य को हासिल करने और विकास यात्रा के □म को जारी रखने के लिए प्रेरित करती हैं। ऐसी स्थिति में इंसानों की परेशानियों को साहित्य में उतराना जरूरी हैं।

लोक साहित्य आदिकाल के राजाओं तथा कवियों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि वह प्रत्येक लोक कंठ में विराजमान था। मध्य युग भक्ति और श्रृंगार का रहा, आधुनिक युग नवजागरण और परिवर्तन का है। लेकिन इक्कीसवीं सदी में लोक साहित्य का स्वरूप बदल रहा है। जो साहित्य अब तक अलिखित था, वह लिखित अवस्था में शोध के माध्यम से सुसंचित कर नया स्वरूप धारण कर रहा है। उपभोक्ता संस्कृति व बाजारवाद के नये स्वरूप के कारण आर्थिक स्तरों पर स्पर्धा के साथ वैमनस्यता भी बढ़ी है। लेकिन वर्तमान राजनैतिक इच्छा शक्ति, संकल्प से स्त्री उत्थान में तीन तलाक से मुक्ति, सर्वशिक्षा अभियान, उज्ज्वला योजना, मुफ्त आवास योजना, कौशल विकास योजना, स्वच्छ भारत अभियान, प्रधानमन्त्री पोषित योजना के अंतर्गत जनधन, जन सुरक्षा, जीवन सुरक्षा, उज्ज्वला, बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ, सामूहिक विवाह, सुरक्षित मातृत्व सुमन, मुफ्त सिलाई, सुकन्या समृद्धि, महिला शक्ति, अटल पेंशन, मुद्रा योजना, स्टैंड़ अप इंडिया, वय वंदन, गरीब कल्याण योजना तथा स्वरोजगार योजना आदि सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास के साथ बाखूबी राष्ट्र के समग्र विकास में विशेष योगदान दे रही है। एक ओर समाज की भौड़ी संस्कृति का विलासी रूप चकाचौंध करने वाला है। दूसरी ओर आर्थिक उदार नीतियों और विश्व पू□ी ने उपनिवेश को जन्म दिया हैं। पिछले पंद्रह वर्षो में भारत के 42 करोड़ लोग गरीबी रेखा से बाहर निकलकर आये, फिर भी 23 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। बच्चों में गरीबी दर 28% तथा वयस्कों में 14% है। सबसे अधिक गरीबी बिहार में है, जबकि केरल देश का एकमात्र प्रदेश जहा□ात्र .7% है जो सबसे कम है। वास्तव में इक्कीसवीं सदी में लोक साहित्य की महत्ता बरकरार है क्योंकि आज के मनुष्य की बौद्धिक सोच, हृदय के कम्पन, संवेदना, विवेकपूर्ण जीवन दृष्टि और सृजनात्मक प्रतिभा को महत्व मिल रहा है। लोक साहित्य में लोक की दूरदर्शिता विद्यमान है।

इक्कीसवीं सदी का भारतीय समाजः

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारत में परिस्थितिया□बड़ी तेजी के साथ परिवर्तित हो रही हैं। भारत की तरफ विकसित देश अमेरिका, □ांस, ब्रिटेन, रूस, चीन तथा अन्य देश बड़ी उम्मीद से देख रहे हैं। उभरती हुई महाशक्ति के रूप में विकसित देशों का भारत के प्रति नज़रिया तो बदला ही है, साथ ही रिश्तों को भी मजबूती मिली है। विश्व की अगुवाई के लिए भारत तैयार हो रहा है। भारत की बौद्धिक सम्पदा , युवाशक्ति सभी क्षेत्रों में अपार संभावनाओं को तलाशते हुए विकास के पथ पर बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। समृद्ध संस्कृति के बल पर भारत का 2047 तक पूर्ण विकसित देश बनने के लिए लक्ष्यों को सुग्राही बनाकर विश्व गुरू बनने का मार्ग प्रशस्त कर लिया है। अमृतकाल में राजनैतिक इच्छाशक्ति ने सभी वर्ग के लोगों में विश्वास जगाया है सभी के सहयोग से सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिष्कृत सभ्यता के आधार पर विविध स्वरूप विकसित हो रहे हैं इसका वास्तविक प्रभाव साहित्यिक भूमिका पर हो रहा है। विस्थापन्य संस्कृति के कारण भारतीय व्यक्ति जैसे-जैसे बदल रहे हैं वैसे-वैसे उनकी भाषा, संस्कार भी बदल रहे हैं। वह समय शीघ्र आने वाला है जिसमें भारत की सभी भाषाऐं घुल मिलकर एक नया रूप ग्रहण करने के लिए लालायित हैं। विविध कार्यो के माध्यम से एक आदमी कई गा□ों, शहरों ओार देशों में पहु□रहा है। देश एवं भाषाओं की सीमाओं को लांघते हुए नये परिवेश में नये विचारों और नई कल्पनाओं की इबारत लिख रहा है, जिसका प्रभाव साहित्य पर देखा जा रहा है। समाज के कल्याण में वर्तमान का वर्णन और मानव के उज्ज्वल भविष्य की कामना

साहित्य में समाविष्ट है। कुछ वर्ष पहले भारत के साहित्य में दलित विमर्श में दलितों के शोषण व उत्पीड़न के चित्रण की बाढ़ सी आ गयी थी, दबे कुचले लोगों ने अपनी वाणी की प्रखर धार से साहित्य जगत को कुरेद ड़ाला। वैसे तो इसके संकेत 1930 में ही शुरू हो गये थे। बीसवीं सदी के अंत में भारत जब आतंक, हिंसा, धार्मिक उन्माद, अपराध, नशा, तनाव और गरीबी विषयक परिस्थितियों से गुजर रहा था और दलितों में शोषण तथा अन्याय के विरूद्ध आ□ोश था□ब साहित्य ने इस विभिषिका से निपटने में अहम् योगदान दिया। आज वर्ण, जाति भेद के विरूद्ध संघर्ष तथा मानवीय स्वतंत्रता व समानता को प्रबल समर्थन मिल रहा है।

भारतीय समुदाय की सांप्रदायिक जीवन पद्धति ने नाते, रिश्त, रीति-रिवाज, प्रथाए,□ंस्कार व जीवन मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। आधी आबादी कही जाने वाली स्त्री ने अपनी अस्मिता, अस्तित्व, व्यक्तित्व की स्वतंत्र शैली को चुना है। स्त्री विमर्श की लेखिकाओं ने स्त्री विर्मश, स्त्री सत्ता, स्त्री अस्मिता, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री चिंतन आदि को नए आयाम दिए हैं। इक्कीसवीं सदी के लोक साहित्य में समलिंगी, विषम लिंगी, अलिंगी, ऊभयलिंगी, गे, परिवर्तित लिंगी और नपुंसक लोगों के मानवीय अधिकारों तथा उनके विस्थापन की चुनौतियां खड़ी हैं। इक्कीसवीं सदी के लोक साहित्य में किसान, श्रमजीवी, शिल्पकार, खानाबदोश, बंधुआ मजदूर और झोपड़पट्टी के समुदाय, इंसान जीवन की मूलभूत सुविधाओं के लिए जद्दोजहद् करते नजर आ रहे हैं। जिनके लिए नये सामाजिक सरोकार के नये प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं और लेखक उन्हें भी प्राथमिकता दे रहे हैं। वर्तमान में आर्थिक विषमताओं के चलते एक बड़ी आबादी गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी, असाध्य रोगों का शिकार हो रही है। गरीब एवं विकासशील देशों का प्राकृतिक एवं मानवीय दोहन हो रहा है, साफ तौर पर दुनिया□े देश अमीर और गरीब के स्तर पर अलगाव पर खड़े हैं। आज के परिवेश में सोशल मीड़िया के माध्यम से सामाजिक विचार-विमर्श तथा सांस्कतिक रीति-रिवाजों को साझा करने तथा शीघ्र समझने की पद्वति ने आध्यात्मिक स्वरूप धारण कर लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक लोक साहित्य लोक कंठ में संचित था, ठीक उसी प्रकार आज लोक साहित्य ही नहीं बल्कि विश्व का शिष्ट साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, खेल, मनोरंजन, आर्थिक, राजनैतिक, रणनीतिक, सामरिक, खगोलीय, सूचनाए□ोशल मीड़िया या इन्टरनेट पर संचित है जिन्हें जब कभी भी सुनना, पढ़ना है, शोधपरक विश्लेषण करना है, सभी सूचनाए□र समय सब की मुट्ठी में हैं। वह 'सत्यम शिवम् सुन्दरम' की तरह सुग्राही है जिसमें राष्ट्र प्रेम निहित है। "ये आज का भारत है, निर्भीक भारत, जुझारू भारत! ये वो भारत है जो नया सोचता है। नये तरीके से सोचता है, जो डार्क जोन में जाकर भी दुनिया में रोशनी की किरण फैला देता है।- प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी।" लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य ने भारतीय समाज के विकास में चार चा□लगा दिए हैं।

निष्कर्ष:

भारतीय समाज सिंधु सभ्यता से लेकर आज तक की वैश्वीकृत दुनिया□े सफर में सांस्कृतिक विविधताओं के प्रति चुनौतियों का सामना कर रहा है जिन्हें लोक साहित्य के माध्यम से समझा जा सकता है। लोक साहित्य समाज में इतना तीव्र व भावावेश पैदा कर सकता है जिससे सामाजिक असमानताऐं सामाजिक न्याय पर भारी पड़ सकती हैं। कुछ विशेष समुदाय के लोग अपने सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संवाद-वार्ता लाप को विस्फोटक तरह भयंकर स्थिति में पहु□ा देते हैं, जिससे समाज में संघर्षपूर्ण स्थिति बन जाती है। इससे समुदाय की भाषा और मात्रभाषा सांस्कृतिक मूल्यों को अमूर्त रूप प्रदान करते हुए वैमनस्यता का संदेश प्रेषित करती है। हमारे माता-पिता, परिवार, नाते-रिश्तेदार, समूह अथवा समुदाय जिस भाषा शैली का प्रयोग करते हैं, उससे उनकी पहचान को संबल मिलता है। वे जिस जाति, समुदाय, देश में जन्म लेते है वहा□े संस्कारिक

वातावरण, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज का उनके भाषायी आचरण पर सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है, यह भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के सभी देशों में एक अजीब सत्य है कि कुछ जाति समुदाय में जन्म लेने से लोग असुरक्षित भाव प्रकट करते हैं। यही भाव उन्हें समाज में असहजता के निर्वहन की ओर ले जाता है 'हम कौन हैं? लोग भावुकता से उग्र और हिंसक प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं, वही भाव उनकी जाति और समुदाय की ओर संकेत करता है, जो लोक कंठ में संरक्षित हो जाता है। सामुदायिक भावना सर्वव्यापी होती है, जो लोक कंठ में विराजमान होती है। वंश, परम्परा, सम्प्रदाय में क्षेत्रीय आधार पर मतभेद दिखाई देता है, परन्तु एकीकरण लिए राष्ट्रीय प्रतीक इन्हें जोड़ने में सफल हुए हैं जो प्रांत और राष्ट्र के मध्य एकैक सम्बंध दर्शाते हैं। राष्ट्र निर्माण के लिए एकीकरण की नीतिया सामाजिक विखण्ड़न को रोकती हैं और जन समुदाय को एक सूत्र में पिरोकर रखती हैं, इसमें देश की भाषा विशेष भूमिका निभाती है। राष्ट्र भाषा में अभिव्यक्त की गई भावनाएं विशेष प्रयोजन से कम शब्दों में प्रचलित हैं, जिनका अर्थ निकालने में श्रोताओं के पसीने छूटते हैं। प्रभावशाली समूहों की परम्पराओं पर आधारित एकीकृत कानून और न्याय व्यवस्था को थोपना होता है जिसकी लाठी उसकी भैंस। बहुसांस्कृतिक राज्य व्यवस्थाओं में भारत के संविधान के अन्तर्गत नृजातीय, धार्मिक, भाषाई पहचान है लेकिन भारत इक्कीसवीं सदी में हिन्दू राष्ट्र की पहचान के लिए उत्सुकता के साथ समूहों के उत्थान और संवैधानिक वचनों के प्रति चुनौतियों का सामना कर रहा है। साम्प्रदायिक हिंसाओं की घटनाओं से राजनैतिक हित साधने की आड़ में सामाजिक मेल मिलाप की भावनाओं के प्रति गहरी चिंताएं खड़ी हैं। इन सभी के साथ समाज में रावण और विभीषण तथा जयचंद की भूमिका में अनेक लोग लगे हुए हैं। पहचान, विश्वास और समर्थन के बल पर समाज के सभी समूहों में समाज के प्रति निष्ठा की भावना तथा समर्पण जागृत करने के प्रयत्न भी महत्वपूर्ण हैं और राजनीतिक स्थिरता व सामाजिक समरसता दीर्घकालीन उद्देश्य को सुनिश्चित करती है। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था भेदभाव और अवर्जन को सीधे नकारती है। राष्ट्रवाद को प्रभावी बनाने के लिए जनमानस एकात्मा, एकजुटता, आर्थिक समानता और अवसरवादिता और अल्पसंख्यक लोगो के हितों का संरक्षण करना है।

उपनिवेशवाद ने जहा साम्प्रदायिकता पर विराम लगाया है। वहीं अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक सिद्धांतों में धर्म निपेक्षता के अतिरिक्त धार्मिक उग्रवाद का विरोधी भाव भी उभर रहा है, लेकिन वोट बैंक की राजनीति से प्रेरित होकर मुस्लिम 14.9% साथ दूसरी बड़ी आबादी अपने आप को अल्पसंख्यक मानती है, यही भाव साम्प्रदायिकता को संबल देता है, जबकि ये राजनैतिक तौर पर भ्रामक तथ्य हैं क्योंकि जनसंख्या की दृष्टि से भारतीय समाज में पारसी सबसे कम वास्तविक अल्पसंख्यक .20%, जैनी .4%, बौद्ध 1%, सिक्ख 1.9%, इसाई 2.3% हैं और देश की सबसे बड़ी आबादी हिन्दुओं की 84.5% है। आज नागरिक संगठनों ने समाज में व्यापक रूप धारण किया हुआ है। राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय अभियानों में सा ता, भूमि सम्बंधी अधिकार, जन जातीय मतभेद, नगरीय शासन, स्त्रियों के प्रति हिंसा, बलात्कार के विरूद्ध अभियान, बांधों, सड़कों के निर्माण, इलेक्ट्रोनिक खण्ड़ों में बढ़ती भूमिका, जनसंचार साधनों के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग, आध्यात्मवाद और भौतिकता के बीच संतुलन, पितृसत्तात्मक समाज, परम्परावाद, आधुनिकता का सहअस्तित्व, सनातन संस्कृति का प्रसार और योग ति द्वारा विश्व कल्याण की जनभावना ने भारत को नई ऊचाइयां प्रदान की हैं। इसमें लोक साहित्य विशेष भूमिका निभा रहा है। लोक साहित्य के मूल्यों की बदौलत इक्कीसवीं सदी का भारतीय समाज विश्व कल्याणकारी संदेश का अभीष्ट है। लोक साहित्य और वैश्विक विकास की संकल्पना में 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' वसुंधरा के भविष्य की जनकल्याणकारी अवाज बन रहा है।

XXXXXXX

सन्दर्भः

1. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय: भोजपुरी ग्राम गीत (द्वितीय भाग वक्तव्य) - पृष्ठ 1
2. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर: हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोकतत्व - पृष्ठ 51
3. डॉ. डी.एन मजूदार: प्रो. एम श्रीनिवासन (1966) की रिपोर्ट 'स्टडी ऑफ ट्रायबल्स' 1969
4. डॉ. डी.एन मजूदार: प्रो. एम श्रीनिवासन (1966) की रिपोर्ट 'स्टडी ऑफ ट्रायबल्स' 1969
5. भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची
6. ऋग्वेद - 10/90/24
7. जैमनीय उपनिषद ब्राह्मण- 3/28
8. डॉ. वासुदेव अग्रवाल: सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) , 1978
9. डॉ. सतेन्द्र: लोक साहित्य विज्ञान- संस्करण 2022 ,पृ. 3
10. डॉ. श्याम परमार: मालवी लोक साहित्य- 1954, संस्करण 2022- पृ. 2
11. डॉ. हजारी प्रसाद: विचार और वितर्क प्रभाग-1954, पृ. 206
12. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय: लोक साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, 2019- पृ. 40
13. संपादक शभुनाथ: हिन्दी साहित्य कोश भाग-1-7 संस्करण 2019- पृ. 7531
14. मोहन लाल बाबुलकर: गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन -पृ. 91
15. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय: लोक साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, 2019- पृ. 290
16. विलियम थॉमस: ए स्टडी ऑफ ऑरिजन ऑफ फोकलोर 1885 पुस्तक से उद्धृत
17. डॉ. श्याम परमार: मालवी लोक साहित्य- 1954, संस्करण 2022- पृ. 34
18. रामनरेश त्रिपाठी: कविता कौमुदी1928, लोकभारती प्रकाशन संस्करण, 2017 - पृ. 5
19. समाचार, पत्र व पत्रिकाओं से संदर्भित अंश